

Constitutional Law of India – II (Semester-II)

PAPER CODE: LLMC201T

Q-1 :- Indian Federalism, Conceptual position of Federalism, Nature of the Indian Constitution, Cooperative Federalism, Relationship of trust and faith between Centre and State, Challenges before Indian Federalism.

भारतीय संघवाद, संघवाद की वैचारिक स्थिति, भारतीय संविधान की प्रकृति, सहकारी संघवाद, केंद्र और राज्य के बीच विश्वास एवं आस्था का संबंध, भारतीय संघवाद के समक्ष चुनौतियाँ।

1. भारतीय संघवाद (Indian Federalism)

भारतीय संघवाद एक ऐसी शासन प्रणाली है जिसमें केंद्र (Union) और राज्य (States) के बीच शक्तियों का विभाजन होता है।

- Adv. Lucky & Adv. Saurabh Adv. Lucky & Adv. Saurabh Adv. Lucky & Adv. Saurabh
- भारत में संघवाद का आधार संविधान है।
 - संविधान के अनुच्छेद 245-263 में केंद्र और राज्यों के संबंधों का वर्णन है।
 - सातवीं अनुसूची (Seventh Schedule) में तीन सूचियाँ दी गई हैं:
 - संघ सूची (Union List)
 - राज्य सूची (State List)
 - समवर्ती सूची (Concurrent List)

☞ भारत को “Union of States” कहा गया है, जिससे स्पष्ट होता है कि भारत एक मजबूत संघ है।

2. संघवाद की वैचारिक स्थिति (Conceptual Position of Federalism)

संघवाद का मूल विचार है शक्ति का विकेंद्रीकरण (Decentralization of Power)।

मुख्य सिद्धांत:

- दो स्तर की सरकार (Dual Government)
- संविधान की सर्वोच्चता
- शक्तियों का स्पष्ट विभाजन
- न्यायपालिका की स्वतंत्रता

☞ भारतीय संघवाद “शुद्ध संघवाद” नहीं है, बल्कि इसे **अर्द्ध-संघीय (Quasi-Federal)** कहा जाता है क्योंकि इसमें केंद्र अधिक शक्तिशाली है।

3. भारतीय संविधान की प्रकृति (Nature of the Indian Constitution)

भारतीय संविधान की प्रकृति मिश्रित (Mixed) है:

संघीय विशेषताएँ

- लिखित संविधान
- सर्वोच्च संविधान
- शक्तियों का विभाजन
- स्वतंत्र न्यायपालिका

एकात्मक (Unitary) विशेषताएँ

- आपातकाल में केंद्र की शक्ति बढ़ जाती है
- राज्यपाल की नियुक्ति केंद्र द्वारा
- एक ही नागरिकता

☞ इसलिए संविधान को “**संघीय + एकात्मक**” दोनों का मिश्रण कहा जाता है।

4. सहकारी संघवाद (Cooperative Federalism)

सहकारी संघवाद का अर्थ है कि **केंद्र और राज्य मिलकर कार्य करें।**

उदाहरण:

- **GST परिषद (GST Council)**
- नीति आयोग (NITI Aayog)
- केंद्र द्वारा राज्यों को वित्तीय सहायता

☞ इसका उद्देश्य है:

- विकास में सहयोग
- नीतियों का समन्वय
- विवादों को कम करना

5. केंद्र और राज्य के बीच विश्वास एवं आस्था का संबंध

संघवाद का सफल संचालन विश्वास (Trust) और सहयोग (Cooperation) पर निर्भर करता है।

जरूरी तत्व:

- परस्पर सम्मान
- राजनीतिक निष्पक्षता
- संवैधानिक मर्यादा का पालन
- वित्तीय सहयोग

☞ यदि केंद्र और राज्य के बीच विश्वास बना रहे, तो प्रशासन अधिक प्रभावी होता है।

6. भारतीय संघवाद के समक्ष चुनौतियाँ (Challenges)

(1) शक्ति का असंतुलन

केंद्र के पास अधिक शक्तियाँ होने से राज्य कमजोर महसूस करते हैं।

(2) वित्तीय असमानता

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

राज्य केंद्र पर वित्तीय रूप से निर्भर रहते हैं।

(3) राजनीतिक मतभेद

अलग-अलग दलों की सरकार होने से टकराव बढ़ता है।

(4) अनुच्छेद 356 का दुरुपयोग

राज्यों में राष्ट्रपति शासन लगाने का विवाद।

(5) क्षेत्रीयता और अलगाववाद

कुछ राज्यों में अलग पहचान की मांग।

(6) प्रशासनिक संघर्ष

नीतियों के क्रियान्वयन में समन्वय की कमी।

📌 निष्कर्ष (Conclusion)

भारतीय संघवाद एक लचीला और व्यावहारिक मॉडल है, जो देश की विविधता को ध्यान में रखकर बनाया गया है। हालाँकि इसमें कुछ चुनौतियाँ हैं, लेकिन सहकारी संघवाद और विश्वासपूर्ण संबंध के माध्यम से इन्हें दूर किया जा सकता है।

अगर चाहो तो मैं इसी टॉपिक पर 500–700 शब्द का एक परफेक्ट एग्जाम आंसर भी बना सकता हूँ ॥

ha

यह रहा आपका 500–700 शब्दों का परफेक्ट एग्जाम आंसर ॥

भारतीय संघवाद: प्रकृति, वैचारिक स्थिति, सहकारी संघवाद एवं चुनौतियाँ

भारतीय संघवाद आधुनिक भारतीय शासन व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, जो केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों के संतुलित वितरण पर आधारित है। भारत एक विशाल और विविधतापूर्ण देश है, जहाँ विभिन्न भाषाएँ, संस्कृतियाँ और परंपराएँ पाई जाती हैं। ऐसी स्थिति में एक ऐसी प्रणाली की आवश्यकता थी, जो एकता बनाए रखते हुए विविधता का सम्मान करे। इसी उद्देश्य से भारतीय संविधान में संघात्मक व्यवस्था को अपनाया गया।

संघवाद का मूल सिद्धांत शक्तियों का विकेंद्रीकरण है, जिसमें शासन की शक्तियाँ दो स्तरों—केंद्र और राज्य—के बीच विभाजित होती हैं। भारतीय संघवाद की वैचारिक स्थिति पारंपरिक संघवाद से कुछ भिन्न है। इसे “अर्द्ध-संघीय” (Quasi-Federal) कहा जाता है, क्योंकि इसमें संघीय और एकात्मक दोनों प्रकार की विशेषताएँ विद्यमान हैं। संविधान सर्वोच्च है और केंद्र तथा राज्य दोनों को अपनी शक्तियाँ संविधान से प्राप्त होती हैं।

भारतीय संविधान की प्रकृति मिश्रित है। इसमें संघीय विशेषताएँ जैसे लिखित और कठोर संविधान, शक्तियों का विभाजन, तथा स्वतंत्र न्यायपालिका शामिल हैं। वहीं दूसरी ओर, एकात्मक विशेषताएँ भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं, जैसे आपातकालीन प्रावधानों के दौरान केंद्र की शक्तियों का विस्तार, राज्यपाल की नियुक्ति केंद्र द्वारा, और एकल नागरिकता। इस प्रकार भारतीय संविधान एक संतुलित संरचना प्रस्तुत करता है।

वर्तमान समय में सहकारी संघवाद (Cooperative Federalism) की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई है। इसका अर्थ है कि केंद्र और राज्य प्रतिस्पर्धा के बजाय सहयोग की भावना से कार्य करें। नीति आयोग, GST परिषद आदि संस्थाएँ इस सहयोग को बढ़ावा देती हैं। सहकारी संघवाद का उद्देश्य है कि केंद्र और राज्य मिलकर विकास की योजनाओं को लागू करें और जनता के कल्याण के लिए समन्वित प्रयास करें।

केंद्र और राज्य के बीच विश्वास एवं आस्था का संबंध संघवाद की सफलता के लिए अनिवार्य है। यदि दोनों के बीच पारस्परिक सम्मान, सहयोग और संवैधानिक मर्यादाओं का पालन हो, तो प्रशासन अधिक प्रभावी और सुचारु रूप से चल सकता है। राजनीतिक मतभेदों के बावजूद, राष्ट्रहित को सर्वोपरि रखना आवश्यक है।

हालाँकि, भारतीय संघवाद के समक्ष अनेक चुनौतियाँ भी विद्यमान हैं। सबसे बड़ी चुनौती शक्ति का असंतुलन है, जहाँ केंद्र के पास अधिक अधिकार होने के कारण राज्य स्वयं को कमजोर महसूस करते हैं। इसके अतिरिक्त, वित्तीय असमानता, राज्यों की केंद्र पर निर्भरता को बढ़ाती है। राजनीतिक मतभेद, विशेषकर जब केंद्र और राज्यों में अलग-अलग दलों की सरकार होती है, टकराव को जन्म देते हैं। अनुच्छेद 356 का दुरुपयोग भी संघीय ढांचे को कमजोर करता है। इसके अलावा, क्षेत्रीयता और अलगाववाद जैसी प्रवृत्तियाँ भी संघवाद के लिए चुनौती हैं।

निष्कर्षतः, भारतीय संघवाद एक लचीली और व्यावहारिक प्रणाली है, जो देश की विविधता को समाहित करते हुए एकता बनाए रखने का कार्य करती है। यद्यपि इसमें कुछ चुनौतियाँ हैं, फिर भी सहकारी संघवाद, पारस्परिक विश्वास और संवैधानिक मूल्यों के पालन के माध्यम से इन चुनौतियों का समाधान किया जा सकता है। अतः भारतीय संघवाद न केवल शासन की एक प्रणाली है, बल्कि यह भारत की एकता और अखंडता का आधार भी है।

Adv. Lucky & Adv. Saurabh Q2: The scheme of distribution of legislative powers in India, judicial approach and present position, recommendations of Sarkaria Commission and Venkatachaliah Commission. Adv. Lucky & Adv. Saurabh Adv. Lucky & Adv. Saurabh

विधायी शक्तियों का वितरण, भारत में विधायी शक्तियों के वितरण की योजना, न्यायिक दृष्टिकोण एवं वर्तमान स्थिति, सरकारिया आयोग एवं वेंकटचलैया आयोग की सिफारिशें।

विधायी शक्तियों का वितरण (Distribution of Legislative Powers)

1. प्रस्तावना (Introduction)

भारत एक संघीय राज्य है, जहाँ केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों का स्पष्ट विभाजन किया गया है। विधायी शक्तियों का वितरण भारतीय संविधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, जिसका उद्देश्य संतुलन, समन्वय और प्रभावी शासन सुनिश्चित करना है।

2. विधायी शक्तियों के वितरण की योजना (Scheme of Distribution)

भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची (Seventh Schedule) में शक्तियों का विभाजन किया गया है, जो तीन सूचियों में विभाजित है:

(1) संघ सूची (Union List)

1. इसमें राष्ट्रीय महत्व के विषय शामिल होते हैं।
2. केवल संसद को कानून बनाने का अधिकार होता है।
3. उदाहरण - रक्षा, विदेश नीति, रेलवे, बैंकिंग आदि।
4. वर्तमान में लगभग **100 विषय** शामिल हैं।

(2) राज्य सूची (State List)

1. इसमें स्थानीय/राज्य महत्व के विषय होते हैं।
2. राज्य विधानमंडल कानून बनाता है।
3. उदाहरण - पुलिस, सार्वजनिक स्वास्थ्य, कृषि आदि।
4. लगभग **61 विषय** शामिल हैं।

(3) समवर्ती सूची (Concurrent List)

1. इसमें केंद्र और राज्य दोनों कानून बना सकते हैं।
2. टकराव की स्थिति में **केंद्र का कानून प्रभावी** होता है।
3. उदाहरण - शिक्षा, विवाह, दिवालियापन आदि।
4. लगभग **52 विषय** शामिल हैं।

3. विशेष प्रावधान (Special Provisions)

1. **अवशिष्ट शक्तियाँ (Residuary Powers)** - केंद्र को दी गई हैं।
2. राष्ट्रीय हित में संसद राज्य सूची पर भी कानून बना सकती है (अनुच्छेद 249)।
3. आपातकाल में केंद्र राज्य विषयों पर भी कानून बना सकता है।
4. दो या अधिक राज्यों के अनुरोध पर संसद कानून बना सकती है (अनुच्छेद 252)।

4. न्यायिक दृष्टिकोण (Judicial Approach)

1. न्यायालय ने हमेशा **संविधान की सर्वोच्चता** को बनाए रखा है।
2. **"Pith and Substance सिद्धांत"** लागू किया जाता है - कानून का वास्तविक उद्देश्य देखा जाता है।
3. **"Doctrine of Colourable Legislation"** - यदि कानून दिखावे के लिए बनाया गया है तो अमान्य।
4. न्यायालय केंद्र और राज्य के बीच **संघर्ष को संतुलित करने का कार्य** करता है।
5. न्यायपालिका ने संघीय ढांचे की रक्षा करते हुए **सहकारी संघवाद** को बढ़ावा दिया है।

5. वर्तमान स्थिति (Present Position)

1. भारत में केंद्र की शक्ति अधिक मजबूत मानी जाती है।
2. जीएसटी व्यवस्था ने केंद्र और राज्यों के बीच सहयोग बढ़ाया है।
3. समवर्ती सूची के विषयों पर केंद्र का प्रभाव बढ़ा है।
4. राज्यों की वित्तीय निर्भरता अभी भी एक बड़ी समस्या है।
5. राजनीतिक मतभेदों के कारण केंद्र-राज्य संबंधों में तनाव देखने को मिलता है।

6. सरकारिया आयोग की सिफारिशें (Sarkaria Commission Recommendations)

1. केंद्र और राज्य के बीच संतुलन बनाए रखने पर जोर।
2. अनुच्छेद 356 (राष्ट्रपति शासन) का सीमित और सावधानीपूर्वक उपयोग।
3. राज्यपाल की नियुक्ति में राजनीतिक निष्पक्षता।
4. अंतर-राज्य परिषद (Inter-State Council) को मजबूत करना।
5. समवर्ती सूची में राज्यों की भूमिका बढ़ाने की सिफारिश।

7. वेंकटचलैया आयोग की सिफारिशें (Venkatachaliah Commission)

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

1. संघीय ढांचे को और अधिक मजबूत करने पर जोर।
2. केंद्र-राज्य संबंधों में सहयोग और विश्वास बढ़ाने की जरूरत।
3. राज्यपाल की भूमिका को स्पष्ट और निष्पक्ष बनाने की सिफारिश।
4. न्यायपालिका की स्वतंत्रता को बनाए रखने पर जोर।
5. संविधान के प्रावधानों का संतुलित और व्यावहारिक उपयोग।

8. निष्कर्ष (Conclusion)

विधायी शक्तियों का वितरण भारतीय संघवाद की आधारशिला है। यह व्यवस्था केंद्र और राज्यों के बीच संतुलन स्थापित करती है, जिससे देश में एकता और विविधता दोनों का संरक्षण होता है। हालांकि, वर्तमान समय में केंद्र की बढ़ती शक्ति और राज्यों की वित्तीय निर्भरता जैसी चुनौतियाँ बनी हुई हैं, फिर भी सहकारी संघवाद और संवैधानिक मूल्यों के माध्यम से इस प्रणाली को मजबूत किया जा सकता है।

भारतीय संघवाद: प्रकृति, वैचारिक स्थिति, सहकारी संघवाद एवं चुनौतियाँ

भारतीय संघवाद आधुनिक भारतीय शासन व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, जो केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों के संतुलित वितरण पर आधारित है। भारत एक विशाल और विविधतापूर्ण देश है, जहाँ विभिन्न भाषाएँ, संस्कृतियाँ और परंपराएँ पाई जाती हैं। ऐसी स्थिति में

एक ऐसी प्रणाली की आवश्यकता थी, जो एकता बनाए रखते हुए विविधता का सम्मान करे। इसी उद्देश्य से भारतीय संविधान में संघात्मक व्यवस्था को अपनाया गया।

संघवाद का मूल सिद्धांत शक्तियों का विकेंद्रीकरण है, जिसमें शासन की शक्तियाँ दो स्तरों—केंद्र और राज्य—के बीच विभाजित होती हैं। भारतीय संघवाद की वैचारिक स्थिति पारंपरिक संघवाद से कुछ भिन्न है। इसे “अर्द्ध-संघीय” (Quasi-Federal) कहा जाता है, क्योंकि इसमें संघीय और एकात्मक दोनों प्रकार की विशेषताएँ विद्यमान हैं। संविधान सर्वोच्च है और केंद्र तथा राज्य दोनों को अपनी शक्तियाँ संविधान से प्राप्त होती हैं।

भारतीय संविधान की प्रकृति मिश्रित है। इसमें संघीय विशेषताएँ जैसे लिखित और कठोर संविधान, शक्तियों का विभाजन, तथा स्वतंत्र न्यायपालिका शामिल हैं। वहीं दूसरी ओर, एकात्मक विशेषताएँ भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं, जैसे आपातकालीन प्रावधानों के दौरान केंद्र की शक्तियों का विस्तार, राज्यपाल की नियुक्ति केंद्र द्वारा, और एकल नागरिकता। इस प्रकार भारतीय संविधान एक संतुलित संरचना प्रस्तुत करता है।

वर्तमान समय में सहकारी संघवाद (Cooperative Federalism) की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई है। इसका अर्थ है कि केंद्र और राज्य प्रतिस्पर्धा के बजाय सहयोग की भावना से कार्य करें। नीति आयोग, GST परिषद आदि संस्थाएँ इस सहयोग को बढ़ावा देती हैं। सहकारी संघवाद का उद्देश्य है कि केंद्र और राज्य मिलकर विकास की योजनाओं को लागू करें और जनता के कल्याण के लिए समन्वित प्रयास करें।

Adv. Lucky & Adv. Saurabh Adv. Lucky & Adv. Saurabh Adv. Lucky & Adv. Saurabh Adv. Lucky & Adv. Saurabh

केंद्र और राज्य के बीच विश्वास और सहयोग का संघवाद को सफल बनाने के लिए अनिवार्य है। यदि दोनों के बीच पारस्परिक सम्मान, सहयोग और संवैधानिक मर्यादाओं का पालन हो, तो प्रशासन अधिक प्रभावी और सुचारु रूप से चल सकता है। राजनीतिक मतभेदों के बावजूद, राष्ट्रहित को सर्वोपरि रखना आवश्यक है।

हालाँकि, भारतीय संघवाद के समक्ष अनेक चुनौतियाँ भी विद्यमान हैं। सबसे बड़ी चुनौती शक्ति का असंतुलन है, जहाँ केंद्र के पास अधिक अधिकार होने के कारण राज्य स्वयं को कमजोर महसूस करते हैं। इसके अतिरिक्त, वित्तीय असमानता, राज्यों की केंद्र पर निर्भरता को बढ़ाती है। राजनीतिक मतभेद, विशेषकर जब केंद्र और राज्यों में अलग-अलग दलों की सरकार होती है, टकराव को जन्म देते हैं। अनुच्छेद 356 का दुरुपयोग भी संघीय ढाँचे को कमजोर करता है। इसके अलावा, क्षेत्रीयता और अलगाववाद जैसी प्रवृत्तियाँ भी संघवाद के लिए चुनौती हैं।

निष्कर्षतः, भारतीय संघवाद एक लचीली और व्यावहारिक प्रणाली है, जो देश की विविधता को समाहित करते हुए एकता बनाए रखने का कार्य करती है। यद्यपि इसमें कुछ चुनौतियाँ हैं, फिर भी सहकारी संघवाद, पारस्परिक विश्वास और संवैधानिक मूल्यों के पालन के माध्यम से इन चुनौतियों का समाधान किया जा सकता है। अतः भारतीय संघवाद न केवल शासन की एक प्रणाली है, बल्कि यह भारत की एकता और अखंडता का आधार भी है।

Q 3:- The Supreme Court of India – Jurisdiction and Powers, its role as guardian of the Constitution, Independence of Judiciary.

न्यायपालिका, भारत का सर्वोच्च न्यायालय – अधिकार क्षेत्र एवं शक्तियाँ, संविधान के संरक्षक के रूप में इसकी भूमिका, न्यायपालिका की स्वतंत्रता।

न्यायपालिका (The Judiciary)

1. प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय लोकतंत्र में न्यायपालिका एक अत्यंत महत्वपूर्ण अंग है। यह न केवल कानूनों की व्याख्या करती है, बल्कि नागरिकों के अधिकारों की रक्षा भी करती है। भारत में न्यायपालिका स्वतंत्र, निष्पक्ष और एकीकृत है, जिसका सर्वोच्च संस्थान **सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court)** है।

2. भारत का सर्वोच्च न्यायालय – अधिकार क्षेत्र एवं शक्तियाँ

भारतीय संविधान के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय को विभिन्न प्रकार के अधिकार क्षेत्र (Jurisdiction) प्राप्त हैं:

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

(1) मूल अधिकार क्षेत्र (Original Jurisdiction) – अनुच्छेद 131

1. केंद्र और राज्यों के बीच विवादों का निपटारा।
2. राज्यों के बीच विवादों का समाधान।
3. यह अधिकार केवल सर्वोच्च न्यायालय को प्राप्त है।

(2) अपीलारी अधिकार क्षेत्र (Appellate Jurisdiction) – अनुच्छेद 132-136

1. उच्च न्यायालय के निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनना।
2. संवैधानिक, सिविल और आपराधिक मामलों में अपील।
3. विशेष अनुमति याचिका (Special Leave Petition – SLP) का अधिकार।

(3) परामर्श अधिकार क्षेत्र (Advisory Jurisdiction) – अनुच्छेद 143

1. राष्ट्रपति किसी विधिक प्रश्न पर सलाह मांग सकता है।
2. न्यायालय की राय बाध्यकारी नहीं होती।

(4) रिट जारी करने की शक्ति (Article 32)

1. मौलिक अधिकारों की रक्षा हेतु रिट जारी करना।
2. प्रमुख रिट –

- हेबियस कॉर्पस
- मंडामस
- सर्टियोरासी
- क्वो वारंटो
- प्रोहीबिशन

(5) अन्य शक्तियाँ

1. न्यायिक पुनरावलोकन (Judicial Review)।
2. संविधान की व्याख्या करने की शक्ति।
3. अवमानना (Contempt of Court) के लिए दंड देने का अधिकार।

3. संविधान के संरक्षक के रूप में भूमिका

1. सर्वोच्च न्यायालय को संविधान का **संरक्षक (Guardian of the Constitution)** माना जाता है।
2. यह सुनिश्चित करता है कि सभी कानून संविधान के अनुरूप हों।
3. **न्यायिक पुनरावलोकन (Judicial Review)** के माध्यम से असंवैधानिक कानूनों को निरस्त कर सकता है।
4. मौलिक अधिकारों की रक्षा करता है (अनुच्छेद 32)।
5. यह **मौलिक संरचना सिद्धांत (Basic Structure Doctrine)** की रक्षा करता है।
6. केंद्र और राज्यों के बीच संतुलन बनाए रखता है।
7. लोकतंत्र, विधि का शासन (Rule of Law) और न्याय सुनिश्चित करता है।

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

4. न्यायपालिका की स्वतंत्रता (Independence of Judiciary)

न्यायपालिका की स्वतंत्रता भारतीय संविधान की एक मूल विशेषता है।

स्वतंत्रता सुनिश्चित करने वाले प्रावधान:

1. **न्यायाधीशों की नियुक्ति** - कोलेजियम प्रणाली के माध्यम से।
2. **कार्यकाल की सुरक्षा** - न्यायाधीशों को आसानी से हटाया नहीं जा सकता।
3. हटाने की प्रक्रिया (Impeachment) कठिन और जटिल है।
4. **वेतन और भत्ते** - संसद द्वारा निर्धारित, सेवा के दौरान कम नहीं किए जा सकते।
5. न्यायपालिका का **कार्यपालिका और विधायिका से पृथक्करण**।
6. न्यायाधीशों को स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने की छूट।
7. न्यायालय की अवमानना पर दंड देने की शक्ति।

5. न्यायपालिका की भूमिका और महत्व

1. नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करना।
2. संविधान की सर्वोच्चता बनाए रखना।
3. सरकार की शक्तियों पर नियंत्रण (Checks and Balances)।
4. कानून का समान रूप से लागू होना सुनिश्चित करना।
5. सामाजिक न्याय और समानता को बढ़ावा देना।

6. निष्कर्ष (Conclusion)

भारतीय न्यायपालिका, विशेषकर सर्वोच्च न्यायालय, देश के लोकतंत्र की रीढ़ है। यह न केवल संविधान की रक्षा करता है, बल्कि नागरिकों के अधिकारों को भी सुरक्षित रखता है। न्यायपालिका की स्वतंत्रता और उसकी शक्तियाँ यह सुनिश्चित करती हैं कि भारत में न्याय, स्वतंत्रता और समानता के सिद्धांत कायम रहें।

न्यायपालिका, सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियाँ एवं न्यायपालिका की स्वतंत्रता

भारतीय शासन प्रणाली में न्यायपालिका एक अत्यंत महत्वपूर्ण अंग है, जो संविधान की रक्षा, कानून की व्याख्या तथा नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा का कार्य करती है। भारत में न्यायपालिका स्वतंत्र, निष्पक्ष एवं सर्वोच्च मानी जाती है। इसका मुख्य उद्देश्य विधि का शासन (Rule of Law) स्थापित करना और न्याय सुनिश्चित करना है।

भारत की न्यायपालिका का शीर्ष **सर्वोच्च न्यायालय** है, जिसकी स्थापना संविधान के अनुच्छेद 124 के अंतर्गत की गई है। इसके अतिरिक्त उच्च न्यायालय और अधीनस्थ न्यायालय भी न्यायिक व्यवस्था का हिस्सा हैं।

सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र (Jurisdiction) को मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया गया है। पहला, **मूल अधिकार क्षेत्र (Original Jurisdiction)**, जिसके अंतर्गत केंद्र और राज्यों या राज्यों के बीच विवाद सीधे सर्वोच्च न्यायालय में लाए जाते हैं (अनुच्छेद 131)। दूसरा, **अपील क्षेत्राधिकार (Appellate Jurisdiction)**, जिसके अंतर्गत उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील की जा सकती है (अनुच्छेद 132-136)। तीसरा, **परामर्शदात्री क्षेत्राधिकार (Advisory Jurisdiction)**, जिसके अंतर्गत राष्ट्रपति महत्वपूर्ण विधिक प्रश्नों पर न्यायालय से सलाह मांग सकते हैं (अनुच्छेद 143)।

इसके अतिरिक्त, सर्वोच्च न्यायालय को **रिट क्षेत्राधिकार (Writ Jurisdiction)** भी प्राप्त है (अनुच्छेद 32), जिसके माध्यम से यह नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करता है। यह पाँच प्रकार की रिट—हैबियस कॉर्पस, मांडमस, सर्टियोरारी, प्रोहीबिशन और क्वो वारंटो—जारी कर सकता है।

सर्वोच्च न्यायालय संविधान का संरक्षक (Guardian of the Constitution) भी है। यह **न्यायिक पुनरावलोकन (Judicial Review)** की शक्ति के माध्यम से संसद और राज्य विधानमंडलों द्वारा

बनाए गए कानूनों की संवैधानिक वैधता की जांच करता है। यदि कोई कानून संविधान के विरुद्ध पाया जाता है, तो न्यायालय उसे निरस्त कर सकता है। इस प्रकार, न्यायालय संविधान की सर्वोच्चता को बनाए रखता है।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता भारतीय लोकतंत्र की एक आधारभूत विशेषता है। इसे सुनिश्चित करने के लिए संविधान में कई प्रावधान किए गए हैं। न्यायाधीशों की नियुक्ति, वेतन और सेवा शर्तों को सुरक्षित रखा गया है, ताकि उन पर किसी प्रकार का राजनीतिक दबाव न हो। न्यायाधीशों को केवल संसद द्वारा महाभियोग (Impeachment) की प्रक्रिया के माध्यम से ही हटाया जा सकता है, जो एक कठिन प्रक्रिया है।

इसके अतिरिक्त, न्यायपालिका को कार्यपालिका और विधायिका से पृथक रखा गया है, जिससे यह निष्पक्ष रूप से कार्य कर सके। न्यायालय के निर्णयों का पालन करना सभी के लिए अनिवार्य होता है, जिससे उसकी गरिमा और प्रभावशीलता बनी रहती है।

हालांकि, न्यायपालिका के समक्ष कुछ चुनौतियाँ भी हैं, जैसे लंबित मामलों की संख्या, न्यायाधीशों की कमी, और न्याय में विलंब। इसके बावजूद, न्यायपालिका ने समय-समय पर अपने निर्णयों के माध्यम से लोकतंत्र को मजबूत किया है और नागरिकों के अधिकारों की रक्षा की है।

निष्कर्षतः, भारतीय न्यायपालिका लोकतंत्र का एक मजबूत स्तंभ है। सर्वोच्च न्यायालय अपनी व्यापक शक्तियों और अधिकार क्षेत्र के माध्यम से संविधान की रक्षा करता है तथा न्यायपालिका की स्वतंत्रता को बनाए रखता है। अतः न्यायपालिका नून की धारणा करता है, बल्कि देश में न्याय और समानता की स्थापना भी सुनिश्चित करता है।

Adv. Lucky & Adv. Saurabh Adv. Lucky & Adv. Saurabh Adv. Lucky & Adv. Saurabh Adv. Lucky & Adv. Saurabh

Q 4 :- Constitutional and judicial approach.

राज्य की अपकृत्य (टॉर्ट) संबंधी देयता – संवैधानिक एवं न्यायिक दृष्टिकोण।

राज्य की अपकृत्य (टॉर्ट) संबंधी देयता – संवैधानिक एवं न्यायिक दृष्टिकोण

1. प्रस्तावना (Introduction)

टॉर्ट (Tort) का अर्थ है ऐसा सिविल गलत कार्य, जिससे किसी व्यक्ति को हानि पहुँचती है और जिसके लिए क्षतिपूर्ति (compensation) दी जाती है। सामान्यतः प्रश्न उठता है कि क्या राज्य भी अपने कर्मचारियों द्वारा किए गए गलत कार्यों के लिए उत्तरदायी होगा? इसी को **राज्य की टॉर्ट संबंधी देयता** कहा जाता है।

2. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background)

1. प्राचीन अंग्रेजी सिद्धांत - “King can do no wrong” (राजा कोई गलत कार्य नहीं कर सकता)।
2. इस सिद्धांत के अनुसार राज्य को दायित्व से मुक्त माना जाता था।
3. भारत में प्रारंभ में इसी सिद्धांत का प्रभाव रहा।
4. धीरे-धीरे न्यायालयों ने इस सिद्धांत को सीमित किया और राज्य को उत्तरदायी ठहराना शुरू किया।

3. संवैधानिक दृष्टिकोण (Constitutional Approach)

1. भारतीय संविधान में राज्य की टॉर्ट देयता का स्पष्ट उल्लेख नहीं है।
2. परंतु **अनुच्छेद 300** के अंतर्गत राज्य को मुकदमा करने और उसके विरुद्ध मुकदमा करने का अधिकार है।
3. इसका अर्थ है कि राज्य को भी अन्य व्यक्तियों की तरह उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।
4. **अनुच्छेद 32 और 226** के तहत नागरिक अपने मौलिक अधिकारों के उल्लंघन पर सीधे न्यायालय जा सकते हैं।
5. संविधान का उद्देश्य - **न्याय और जवाबदेही सुनिश्चित करना**।

4. न्यायिक दृष्टिकोण (Judicial Approach)

भारतीय न्यायालयों ने राज्य की देयता को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

(1) सार्वभौमिक और गैर-सार्वभौमिक कार्य (Sovereign vs Non-Sovereign Functions)

1. **सार्वभौमिक कार्य (Sovereign Functions)**
 - जैसे रक्षा, पुलिस, कानून-व्यवस्था
 - इन कार्यों में राज्य सामान्यतः उत्तरदायी नहीं माना जाता
2. **गैर-सार्वभौमिक कार्य (Non-Sovereign Functions)**
 - जैसे व्यापार, परिवहन, सार्वजनिक सेवाएँ
 - इन कार्यों में राज्य उत्तरदायी होता है

5. प्रमुख न्यायिक निर्णय (Important Case Laws)

1. P & O Steam Navigation Company v. Secretary of State

1. इस मामले में पहली बार राज्य की देयता को स्वीकार किया गया।

2. गैर-सार्वभौमिक कार्यों में राज्य को उत्तरदायी ठहराया गया।

2. State of Rajasthan v. Vidyawati

1. सरकारी वाहन की लापरवाही से दुर्घटना हुई।
2. न्यायालय ने राज्य को उत्तरदायी ठहराया।
3. आधुनिक दृष्टिकोण की शुरुआत।

3. Kasturi Lal v. State of Uttar Pradesh

1. पुलिस की लापरवाही से सोना चोरी हो गया।
2. न्यायालय ने इसे सार्वभौमिक कार्य मानकर राज्य को मुक्त कर दिया।
3. इस निर्णय की काफी आलोचना हुई।

4. Nilabati Behera v. State of Orissa

1. पुलिस हिरासत में मृत्यु हुई।
2. न्यायालय ने क्षतिपूर्ति देने का आदेश दिया।
3. मौलिक अधिकारों के उल्लंघन पर राज्य की जिम्मेदारी तय की।

6 आधुनिक दृष्टिकोण (Modern Approach)

1. अब न्यायालय मानवाधिकारों की रक्षा को प्राथमिकता देते हैं।
2. राज्य को अधिक जवाबदेह (Accountable) बनाया गया है।
3. मौलिक अधिकारों के उल्लंघन पर प्रत्यक्ष क्षतिपूर्ति दी जाती है।
4. "सार्वभौमिक कार्य" की सीमा धीरे-धीरे कम होती जा रही है।
5. न्यायपालिका नागरिकों के हित में उदार दृष्टिकोण अपनाती है।

7. निष्कर्ष (Conclusion)

राज्य की टॉर्ट संबंधी देयता का सिद्धांत समय के साथ विकसित हुआ है। जहाँ पहले राज्य को पूर्ण छूट प्राप्त थी, वहीं आज न्यायालयों ने इसे सीमित कर दिया है और राज्य को नागरिकों के प्रति उत्तरदायी बनाया है। आधुनिक युग में यह सिद्धांत न्याय, समानता और विधि के शासन (Rule of Law) को मजबूत करता है।

राज्य की अपकृत्य (टॉर्ट) संबंधी देयता – संवैधानिक एवं न्यायिक दृष्टिकोण

राज्य की अपकृत्य संबंधी देयता (Tortious Liability of the State) का अर्थ है कि यदि राज्य या उसके कर्मचारी अपने कर्तव्यों के पालन में किसी व्यक्ति को हानि पहुँचाते हैं, तो क्या राज्य

उस हानि के लिए उत्तरदायी होगा। यह विषय भारतीय विधि में अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह नागरिकों के अधिकारों और राज्य की जिम्मेदारी के बीच संतुलन स्थापित करता है।

भारत में राज्य की देयता का आधार **Law of Torts** और संविधान दोनों में निहित है। संविधान के **अनुच्छेद 300** के अंतर्गत यह प्रावधान है कि भारत सरकार और राज्य सरकारें अपने नाम से मुकदमा कर सकती हैं और उन पर मुकदमा किया जा सकता है। इस प्रकार, राज्य को एक विधिक व्यक्ति (Legal Person) के रूप में मान्यता दी गई है।

ऐतिहासिक रूप से, राज्य की देयता के प्रश्न पर अंग्रेजी कानून का प्रभाव रहा है, जिसमें “The King can do no wrong” का सिद्धांत लागू था। परंतु भारतीय न्यायपालिका ने समय के साथ इस सिद्धांत को सीमित कर दिया और राज्य को उत्तरदायी ठहराने की दिशा में प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाया।

न्यायिक दृष्टिकोण के अंतर्गत राज्य की देयता को दो भागों में विभाजित किया गया है—

1. **सार्वभौमिक कार्य (Sovereign Functions)**
2. **गैर-सार्वभौमिक कार्य (Non-Sovereign Functions)**

यदि राज्य का कार्य “सार्वभौमिक” है, जैसे रक्षा, पुलिस व्यवस्था, न्याय प्रशासन, तो सामान्यतः राज्य को देयता से छूट दी जाती है। जबकि “गैर-सार्वभौमिक” कार्यों, जैसे व्यापारिक या व्यावसायिक गतिविधियों में, राज्य को एक सामान्य व्यक्ति की तरह उत्तरदायी ठहराया जाता है।

इस संदर्भ में कई महत्वपूर्ण निर्णय दिए गए हैं। **State of Rajasthan v. Vidyawati** में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि राज्य अपने कर्मचारियों की लापरवाही के लिए उत्तरदायी होगा, यदि वह कार्य गैर-सार्वभौमिक प्रकृति का है। इसके विपरीत, **Kasturi Lal v. State of Uttar Pradesh** में न्यायालय ने राज्य को उत्तरदायित्व से मुक्त किया, क्योंकि कार्य को “सार्वभौमिक” माना गया।

हालाँकि, बाद के निर्णयों में न्यायपालिका ने नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा को प्राथमिकता दी। **Nilabati Behera v. State of Orissa** में न्यायालय ने स्पष्ट किया कि यदि राज्य द्वारा मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता है, तो राज्य को क्षतिपूर्ति (Compensation) देना होगा, चाहे कार्य सार्वभौमिक ही क्यों न हो। यह एक महत्वपूर्ण परिवर्तन था, जिससे “संवैधानिक टॉर्ट” (Constitutional Tort) की अवधारणा विकसित हुई।

संवैधानिक दृष्टिकोण से, अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार) का उल्लंघन होने पर न्यायालय क्षतिपूर्ति प्रदान कर सकता है। इस प्रकार, न्यायपालिका ने यह सुनिश्चित किया है कि राज्य अपनी शक्ति का दुरुपयोग न करे और नागरिकों के अधिकारों की रक्षा हो।

वर्तमान स्थिति में, यह कहा जा सकता है कि राज्य की अपकृत्य देयता के क्षेत्र में न्यायपालिका ने एक संतुलित और प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाया है। जहाँ एक ओर आवश्यक सरकारी

कार्यों के लिए कुछ छूट दी गई है, वहीं दूसरी ओर नागरिकों के मौलिक अधिकारों के संरक्षण को सर्वोपरि रखा गया है।

निष्कर्षतः, राज्य की टॉर्ट संबंधी देयता भारतीय विधि का एक विकसित होता हुआ क्षेत्र है। न्यायपालिका ने अपने निर्णयों के माध्यम से इसे अधिक उत्तरदायी और न्यायसंगत बनाया है। यह सिद्धांत न केवल राज्य की जवाबदेही सुनिश्चित करता है, बल्कि नागरिकों के अधिकारों की प्रभावी सुरक्षा भी करता है।

Q :5- Freedom of Trade, Commerce and Intercourse (Articles 301–308)

व्यापार, वाणिज्य एवं आवागमन की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 301–308)

व्यापार, वाणिज्य एवं आवागमन की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 301–308)

1. प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय संविधान के भाग XIII (अनुच्छेद 301 से 308) में पूरे भारत में व्यापार, वाणिज्य और आवागमन की स्वतंत्रता का प्रावधान किया गया है। इसका उद्देश्य देश में आर्थिक एकता (Economic Unity) स्थापित करना और राज्यों के बीच मुक्त व्यापार को बढ़ावा देना है।

2. अनुच्छेद 301 – स्वतंत्रता का मूल सिद्धांत

1. पूरे भारत में व्यापार, वाणिज्य और आवागमन स्वतंत्र रहेगा।
2. कोई भी व्यक्ति देश के किसी भी भाग में व्यापार कर सकता है।
3. यह स्वतंत्रता संवैधानिक गारंटी है।
4. इसका उद्देश्य - राष्ट्रीय आर्थिक एकता को बनाए रखना।

3. अनुच्छेद 302 – संसद की शक्ति

1. संसद को यह अधिकार है कि वह जनहित (Public Interest) में व्यापार पर प्रतिबंध लगा सकती है।
2. यह शक्ति पूरे देश में लागू होती है।
3. प्रतिबंध उचित और आवश्यक होने चाहिए।

4. अनुच्छेद 303 – भेदभाव का निषेध

1. संसद और राज्य किसी विशेष राज्य को लाभ या हानि नहीं पहुँचा सकते।
2. राज्यों के बीच भेदभाव निषिद्ध है।
3. अपवाद - यदि देश के किसी भाग में कमी (scarcity) हो तो विशेष प्रावधान किए जा सकते हैं।

5. अनुच्छेद 304 – राज्यों की शक्ति

1. राज्य बाहरी वस्तुओं पर कर (Tax) लगा सकते हैं।
2. परंतु यह कर भेदभावपूर्ण नहीं होना चाहिए।
3. राज्य जनहित में उचित प्रतिबंध लगा सकते हैं।
4. ऐसे कानून के लिए राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति आवश्यक होती है।

6. अनुच्छेद 305–307 – अन्य प्रावधान

1. अनुच्छेद 305 - पहले से लागू कानूनों की सुरक्षा।
2. अनुच्छेद 306 - (अब निरस्त)।
3. अनुच्छेद 307 - संसद को प्राधिकरण स्थापित करने का अधिकार।

7. न्यायिक दृष्टिकोण (Judicial Approach)

1. न्यायालयों ने अनुच्छेद 301 की व्याख्या करते हुए कहा कि केवल वे प्रतिबंध अवैध हैं जो सीधे और तात्कालिक रूप से व्यापार को बाधित करते हैं।
2. उचित और सार्वजनिक हित में लगाए गए प्रतिबंध वैध माने जाते हैं।
3. कर (Tax) और प्रतिबंध (Restriction) में अंतर किया गया है।
4. न्यायपालिका ने आर्थिक स्वतंत्रता और राज्य के हितों के बीच संतुलन बनाए रखा।

8. प्रमुख विशेषताएँ (Key Features)

1. यह स्वतंत्रता पूर्ण (Absolute) नहीं है।
2. केंद्र और राज्य दोनों को कुछ परिस्थितियों में प्रतिबंध लगाने का अधिकार है।
3. इसका मुख्य उद्देश्य -
 - आर्थिक एकता
 - मुक्त व्यापार
 - राष्ट्रीय विकास

9. वर्तमान स्थिति (Present Position)

1. GST व्यवस्था ने पूरे भारत को एक एकीकृत बाजार (Single Market) बना दिया है।
2. राज्यों के बीच व्यापार में बाधाएँ कम हुई हैं।
3. केंद्र और राज्य के बीच सहकारी संघवाद बढ़ा है।
4. फिर भी कुछ मामलों में कर नीति और प्रतिबंधों को लेकर विवाद होते रहते हैं।

10. निष्कर्ष (Conclusion)

अनुच्छेद 301-308 भारतीय संविधान में आर्थिक स्वतंत्रता का आधार हैं। ये प्रावधान देश में मुक्त व्यापार, समान अवसर और आर्थिक एकता सुनिश्चित करते हैं। हालांकि यह स्वतंत्रता पूर्ण नहीं है, परंतु उचित प्रतिबंधों के साथ यह व्यवस्था राष्ट्र के समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

व्यापार, वाणिज्य एवं आवागमन की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 301-308)

भारतीय संविधान में व्यापार, वाणिज्य और आवागमन की स्वतंत्रता को विशेष महत्व दिया गया है। यह प्रावधान देश की आर्थिक एकता और समग्र विकास को सुनिश्चित करने के लिए किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 301 से 308 तक इन स्वतंत्रताओं का विस्तृत वर्णन मिलता है, जिनका उद्देश्य पूरे भारत में एक मुक्त और निर्बाध आर्थिक व्यवस्था स्थापित करना है।

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

अनुच्छेद 301 इस विषय का मूल प्रावधान है, जो यह घोषित करता है कि भारत के समस्त क्षेत्र में व्यापार, वाणिज्य और आवागमन स्वतंत्र होगा। इसका अर्थ यह है कि किसी भी व्यक्ति को देश के किसी भी भाग में व्यापार करने, वस्तुओं के आदान-प्रदान और आवागमन की स्वतंत्रता प्राप्त है। यह प्रावधान आर्थिक बाधाओं को समाप्त कर एक एकीकृत राष्ट्रीय बाजार के निर्माण को प्रोत्साहित करता है।

हालांकि, यह स्वतंत्रता पूर्णतः निरंकुश नहीं है। संविधान ने कुछ परिस्थितियों में इस स्वतंत्रता पर युक्तिसंगत प्रतिबंध लगाने की अनुमति दी है। **अनुच्छेद 302** के अंतर्गत संसद को यह अधिकार दिया गया है कि वह जनहित में व्यापार और वाणिज्य की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगा सकती है। उदाहरण के लिए, आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति बनाए रखने या आर्थिक संतुलन स्थापित करने के लिए ऐसे प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं।

अनुच्छेद 303 यह सुनिश्चित करता है कि संसद या राज्य विधानमंडल किसी एक राज्य को विशेष लाभ या दूसरे राज्य के साथ भेदभाव नहीं कर सकते। यह प्रावधान संघीय संतुलन बनाए रखने में सहायक है।

अनुच्छेद 304 राज्यों को यह अधिकार देता है कि वे अपने क्षेत्र में व्यापार पर कुछ कर लगा सकते हैं, बशर्ते कि वे अन्य राज्यों के साथ भेदभाव न करें। साथ ही, राज्य सार्वजनिक हित में उचित प्रतिबंध भी लगा सकते हैं, लेकिन इसके लिए राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति आवश्यक होती है।

अनुच्छेद 305 कुछ पूर्ववर्ती कानूनों और राज्य के एकाधिकार को संरक्षण प्रदान करता है। वहीं **अनुच्छेद 307** संसद को यह अधिकार देता है कि वह इन प्रावधानों के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए प्राधिकरण (Authority) की स्थापना कर सके।

न्यायपालिका ने इन प्रावधानों की व्याख्या करते हुए महत्वपूर्ण दिशा-निर्देश प्रदान किए हैं। **Atiabari Tea Co. v. State of Assam** में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद 301 का उद्देश्य व्यापार पर प्रत्यक्ष और तात्कालिक बाधाओं को रोकना है। इसी प्रकार, **Automobile Transport v. State of Rajasthan** में न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि यदि कर “प्रतिपूरक” (Compensatory) प्रकृति का है, तो वह अनुच्छेद 301 का उल्लंघन नहीं माना जाएगा।

वर्तमान समय में, वस्तु एवं सेवा कर (GST) व्यवस्था ने पूरे देश में एक समान कर प्रणाली लागू करके व्यापारिक बाधाओं को काफी हद तक समाप्त कर दिया है। इससे “एक राष्ट्र, एक कर” की अवधारणा को बल मिला है और आर्थिक एकता को मजबूती मिली है।

निष्कर्षतः, व्यापार, वाणिज्य और आवागमन की स्वतंत्रता भारतीय संविधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, जो देश की आर्थिक प्रगति और एकता को सुनिश्चित करती है। यद्यपि इस स्वतंत्रता पर कुछ युवितसंगत प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं, फिर भी इसका मूल उद्देश्य एक मुक्त और समन्वित राष्ट्रीय बाजार का निर्माण करना है। न्यायपालिका ने अपने निर्णयों के माध्यम से इन प्रावधानों की सही व्याख्या कर इन्हें प्रभावी बनाया है।

Q 6 : - Parliamentary Privileges

Adv. Lucky & Adv. Saurabh
संसदीय विशेषाधिकार

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

संसदीय विशेषाधिकार (Parliamentary Privileges)

1. प्रस्तावना (Introduction)

संसदीय विशेषाधिकार वे विशेष अधिकार और छूट हैं जो संसद और उसके सदस्यों को दिए जाते हैं ताकि वे अपने कर्तव्यों का निर्वहन **स्वतंत्र, निर्भीक और प्रभावी रूप से** कर सकें। इनका उद्देश्य संसद की गरिमा, स्वायत्तता और कार्यकुशलता को बनाए रखना है।

2. संवैधानिक आधार (Constitutional Basis)

1. संसदीय विशेषाधिकार भारतीय संविधान के **अनुच्छेद 105** में वर्णित हैं (संसद के लिए)।
2. इसी प्रकार राज्यों की विधानसभाओं के लिए **अनुच्छेद 194** में प्रावधान है।
3. जब तक संसद कानून द्वारा इन्हें परिभाषित नहीं करती, तब तक ये विशेषाधिकार **ब्रिटिश संसद** के समान माने जाते हैं।

3. संसदीय विशेषाधिकारों का उद्देश्य (Objectives)

1. संसद के कार्य में बाधा रहित संचालन सुनिश्चित करना।
2. सदस्यों को स्वतंत्र रूप से बोलने और विचार व्यक्त करने की छूट देना।
3. कार्यपालिका और न्यायपालिका के अनावश्यक हस्तक्षेप से सुरक्षा।
4. लोकतंत्र की सुदृढ़ता और पारदर्शिता बनाए रखना।

4. संसदीय विशेषाधिकारों के प्रकार (Types of Privileges)

(A) सामूहिक विशेषाधिकार (Collective Privileges)

1. संसद को अपनी कार्यवाही को नियंत्रित करने का अधिकार।
2. संसद की अवमानना (Contempt of Parliament) पर दंड देने की शक्ति।
3. गुप्त बैठकों (Secret sittings) का संचालन।
4. बाहरी व्यक्तियों को कार्यवाही से बहिष्कृत (Exclude) करने का अधिकार।

(B) व्यक्तिगत विशेषाधिकार (Individual Privileges)

- Adv. Lucky & Adv. Saurabh Adv. Lucky & Adv. Saurabh Adv. Lucky & Adv. Saurabh
1. भाषण की स्वतंत्रता - संसद में गवाही देने के लिए, किसी न्यायालय में कार्यवाही नहीं।
 2. गिरफ्तारी से छूट - सत्र के दौरान कुछ मामलों में सुरक्षा।
 3. न्यायालय में गवाही देने से छूट (कुछ परिस्थितियों में)।
 4. सदस्यों को अपने कर्तव्यों के निर्वहन में बाधा से संरक्षण।

5. संसदीय अवमानना (Contempt of Parliament)

1. कोई भी कार्य जो संसद के कार्य में बाधा उत्पन्न करे, अवमानना कहलाता है।
2. उदाहरण -
 - संसद की कार्यवाही का गलत प्रकाशन
 - सदस्यों को धमकाना
3. संसद को दोषी व्यक्ति को दंडित करने का अधिकार है।

6. न्यायिक दृष्टिकोण (Judicial Approach)

1. संसदीय विशेषाधिकार पूर्णतः असीमित नहीं हैं।
2. न्यायालय इनकी सीमित समीक्षा (Judicial Review) कर सकता है।

- यदि विशेषाधिकार का प्रयोग मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है, तो न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है।
- न्यायपालिका और संसद के बीच संतुलन बनाए रखा जाता है।

7. प्रमुख विशेषताएँ (Key Features)

- विशेषाधिकारों का उद्देश्य व्यक्तिगत लाभ नहीं, बल्कि संस्थागत कार्यक्षमता है।
- ये अधिकार संविधान द्वारा संरक्षित हैं।
- इनका प्रयोग सीमित और जिम्मेदारी के साथ किया जाना चाहिए।
- इनकी स्पष्ट परिभाषा का अभाव कई बार विवाद उत्पन्न करता है।

8. वर्तमान स्थिति (Present Scenario)

- आज भी कई विशेषाधिकार अस्पष्ट (Uncodified) हैं।
- मीडिया और न्यायपालिका के साथ टकराव की स्थिति कभी-कभी उत्पन्न होती है।
- पारदर्शिता और जवाबदेही की मांग बढ़ रही है।
- विशेषज्ञों का मत है कि विशेषाधिकारों को स्पष्ट रूप से परिभाषित (Codify) किया जाना चाहिए।

9. निष्कर्ष (Conclusion)

संसदीय विशेषाधिकार भारतीय लोकतंत्र का एक महत्वपूर्ण अंग हैं, जो संसद की स्वतंत्रता और गरिमा को बनाए रखते हैं। हालांकि, इनका उपयोग संतुलित और जिम्मेदारीपूर्वक होना चाहिए ताकि यह नागरिकों के अधिकारों के साथ टकराव न पैदा करे। उचित संतुलन के माध्यम से ही लोकतंत्र को मजबूत बनाया जा सकता है।

संसदीय विशेषाधिकार (Parliamentary Privileges)

संसदीय विशेषाधिकार वे विशेष अधिकार और उन्मुक्तियाँ (Privileges and Immunities) हैं, जो संसद और उसके सदस्यों को प्रदान किए जाते हैं ताकि वे अपने विधायी कार्यों का निर्वहन स्वतंत्र और प्रभावी ढंग से कर सकें। ये विशेषाधिकार लोकतांत्रिक व्यवस्था के सुचारु संचालन के लिए आवश्यक हैं, क्योंकि इनके बिना संसद की गरिमा और कार्यक्षमता प्रभावित हो सकती है।

भारतीय संविधान में संसदीय विशेषाधिकारों का उल्लेख मुख्यतः अनुच्छेद 105 (संसद के लिए) और अनुच्छेद 194 (राज्य विधानमंडलों के लिए) में किया गया है। इन अनुच्छेदों के अंतर्गत संसद और उसके सदस्यों को कुछ विशेष अधिकार प्रदान किए गए हैं।

संसदीय विशेषाधिकारों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1. सामूहिक विशेषाधिकार (Collective Privileges)
2. व्यक्तिगत विशेषाधिकार (Individual Privileges)

सामूहिक विशेषाधिकार संसद के दोनों सदनों को प्राप्त होते हैं। इनमें प्रमुख हैं—

- सदन की कार्यवाही को संचालित करने का अधिकार
- बाहरी हस्तक्षेप से स्वतंत्रता
- अपने सदस्यों को दंडित करने की शक्ति
- सदन की अवमानना (Contempt of House) के लिए कार्रवाई करने का अधिकार

व्यक्तिगत विशेषाधिकार सदस्यों को प्राप्त होते हैं, जिनमें प्रमुख हैं—

- सदन में भाषण की स्वतंत्रता (Freedom of Speech in Parliament)
- सदन की कार्यवाही के दौरान गिरफ्तारी से कुछ हद तक संरक्षण
- न्यायालय में उनके वक्तव्यों के लिए उत्तरदायित्व से छूट

इन विशेषाधिकारों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सांसद बिना किसी भय, दबाव या बाहरी हस्तक्षेप के अपने कर्तव्यों का पालन कर सकें। हालांकि, ये विशेषाधिकार निरंकुश नहीं हैं और इन्हें संविधान एवं लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुरूप ही प्रयोग किया जाना चाहिए।

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

न्यायपालिका ने संसदीय विशेषाधिकारों की सीमाओं को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। **M.S.M. Sharma v. Sri Krishna Sinha** में सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना कि संसदीय विशेषाधिकार मौलिक अधिकारों पर कुछ परिस्थितियों में वरीयता रख सकते हैं। वहीं, **Keshav Singh Case** में न्यायालय ने स्पष्ट किया कि संसदीय विशेषाधिकारों का प्रयोग संविधान के दायरे में ही होना चाहिए और न्यायिक समीक्षा से पूर्णतः परे नहीं है।

वर्तमान स्थिति में, संसदीय विशेषाधिकारों के दुरुपयोग की आशंकाएँ भी सामने आती रही हैं, जैसे कि विशेषाधिकार हनन के मामलों में अत्यधिक कार्रवाई या राजनीतिक उद्देश्यों के लिए इनका उपयोग। इसलिए यह आवश्यक है कि इन विशेषाधिकारों का प्रयोग संतुलित और जिम्मेदारीपूर्ण ढंग से किया जाए।

निष्कर्षतः, संसदीय विशेषाधिकार भारतीय लोकतंत्र का एक महत्वपूर्ण अंग हैं, जो संसद की स्वतंत्रता और गरिमा को बनाए रखने में सहायक हैं। ये विशेषाधिकार संसद और उसके सदस्यों को प्रभावी ढंग से कार्य करने की शक्ति प्रदान करते हैं, लेकिन इनके साथ उत्तरदायित्व भी जुड़ा हुआ है। अतः इनका प्रयोग संविधान की मर्यादाओं और लोकतांत्रिक सिद्धांतों के अनुरूप होना चाहिए।

Question 7:- Parliamentary form of Government versus Presidential form of Government.

संसदीय शासन प्रणाली बनाम राष्ट्रपति शासन प्रणाली।

संसदीय शासन प्रणाली बनाम राष्ट्रपति शासन प्रणाली

1. प्रस्तावना (Introduction)

विश्व में मुख्यतः दो प्रकार की शासन प्रणालियाँ प्रचलित हैं—संसदीय शासन प्रणाली और राष्ट्रपति शासन प्रणाली। भारत ने संसदीय प्रणाली को अपनाया है, जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका में राष्ट्रपति प्रणाली लागू है। दोनों प्रणालियों का उद्देश्य लोकतांत्रिक शासन स्थापित करना है, परंतु उनकी संरचना और कार्यप्रणाली में महत्वपूर्ण अंतर है।

2. संसदीय शासन प्रणाली (Parliamentary System)

- कार्यपालिका (Executive) विधायिका (Legislature) से उत्पन्न होती है।
- प्रधानमंत्री वास्तविक कार्यपालिका प्रमुख होता है।
- राष्ट्रपति/राजा नाममात्र (Nominal Head) होता है।
- मंत्रिपरिषद् संसद के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है।
- सरकार को संसद में बहुमत बनाए रखना होता है।
- अविश्वास प्रस्ताव (No Confidence Motion) से सरकार गिर सकती है।
- कार्यपालिका और विधायिका के बीच घनिष्ठ संबंध होता है।
- उदाहरण - भारत, ब्रिटेन।

3. राष्ट्रपति शासन प्रणाली (Presidential System)

- कार्यपालिका और विधायिका पूर्णतः पृथक् (Separation of Powers) होती हैं।
- राष्ट्रपति ही वास्तविक कार्यपालिका प्रमुख होता है।
- राष्ट्रपति सीधे जनता द्वारा निर्वाचित होता है।
- राष्ट्रपति अपने कार्यकाल के दौरान स्थिर (Fixed Tenure) रहता है।
- विधायिका राष्ट्रपति को आसानी से नहीं हटा सकती।
- राष्ट्रपति अपने मंत्रियों की नियुक्ति करता है, जो उसके प्रति उत्तरदायी होते हैं।
- कार्यपालिका और विधायिका के बीच स्पष्ट विभाजन होता है।
- उदाहरण - संयुक्त राज्य अमेरिका

4. संसदीय और राष्ट्रपति प्रणाली में अंतर (Comparison)

आधार	संसदीय प्रणाली	राष्ट्रपति प्रणाली
कार्यपालिका की उत्पत्ति	विधायिका से	जनता से सीधे

आधार	संसदीय प्रणाली	राष्ट्रपति प्रणाली
कार्यपालिका प्रमुख	प्रधानमंत्री	राष्ट्रपति
उत्तरदायित्व	संसद के प्रति	जनता के प्रति
कार्यकाल	अनिश्चित (बहुमत पर निर्भर)	निश्चित
शक्ति विभाजन	मिश्रित	स्पष्ट
सरकार की स्थिरता	कम	अधिक
नियंत्रण	संसद का अधिक नियंत्रण	सीमित नियंत्रण
उदाहरण	भारत	अमेरिका

5. संसदीय प्रणाली के लाभ (Advantages)

- सरकार उत्तरदायी और जवाबदेह रहती है।
- संसद के माध्यम से जनता का प्रत्यक्ष नियंत्रण।
- लचीली प्रणाली - आवश्यकतानुसार सरकार बदली जा सकती है।
- सहकारी शासन (Cooperative Governance) को बढ़ावा।

6. संसदीय प्रणाली के दोष (Disadvantages)

- राजनीतिक अस्थिरता की संभावना।
- बार-बार सरकार गिरने का खतरा।
- निर्णय लेने में देरी।

7. राष्ट्रपति प्रणाली के लाभ (Advantages)

- स्थिर सरकार - निश्चित कार्यकाल।
- निर्णय लेने में तेजी।
- स्पष्ट शक्ति विभाजन से प्रशासन में दक्षता।

8. राष्ट्रपति प्रणाली के दोष (Disadvantages)

1. तानाशाही की संभावना (Power Concentration)।
2. विधायिका और कार्यपालिका में टकराव।
3. जनता के प्रति प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व कम प्रभावी हो सकता है।

9. निष्कर्ष (Conclusion)

संसदीय और राष्ट्रपति दोनों प्रणालियाँ लोकतांत्रिक शासन के महत्वपूर्ण मॉडल हैं। भारत जैसे विविधता वाले देश के लिए संसदीय प्रणाली अधिक उपयुक्त मानी गई है क्योंकि यह जवाबदेही, लचीलापन और प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करती है। वहीं राष्ट्रपति प्रणाली स्थिरता और दक्षता प्रदान करती है। इसलिए किसी भी देश के लिए उपयुक्त प्रणाली का चयन उसकी राजनीतिक, सामाजिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

संसदीय शासन प्रणाली बनाम राष्ट्रपति शासन प्रणाली

विश्व में प्रचलित दो प्रमुख शासन प्रणालियाँ हैं—संसदीय शासन प्रणाली (Parliamentary System) और राष्ट्रपति शासन प्रणाली (Presidential System) दोनों का उद्देश्य लोकतांत्रिक शासन स्थापित करना है, परंतु इनके कार्य करने के तरीके, संरचना और शक्तियों के वितरण में महत्वपूर्ण अंतर पाया जाता है।

संसदीय शासन प्रणाली वह प्रणाली है जिसमें कार्यपालिका (Executive) विधायिका (Legislature) के प्रति उत्तरदायी होती है। भारत में यह प्रणाली अपनाई गई है, जहाँ राष्ट्रपति संवैधानिक प्रमुख होता है, जबकि वास्तविक कार्यकारी शक्ति प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद के पास होती है। इस प्रणाली की मुख्य विशेषता यह है कि सरकार संसद के प्रति उत्तरदायी रहती है और अविश्वास प्रस्ताव के माध्यम से उसे हटाया जा सकता है।

इसके विपरीत, राष्ट्रपति शासन प्रणाली में कार्यपालिका और विधायिका के बीच स्पष्ट पृथक्करण (Separation of Powers) होता है। इसमें राष्ट्रपति ही वास्तविक कार्यपालिका प्रमुख होता है और वह सीधे जनता द्वारा चुना जाता है, जैसे कि संयुक्त राज्य अमेरिका में। राष्ट्रपति अपने कार्यकाल के दौरान विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होता और उसे केवल महाभियोग (Impeachment) की प्रक्रिया द्वारा ही हटाया जा सकता है।

दोनों प्रणालियों के बीच मुख्य अंतर निम्नलिखित हैं:

1. कार्यपालिका और विधायिका का संबंध

संसदीय प्रणाली में कार्यपालिका, विधायिका का ही हिस्सा होती है और उसके प्रति उत्तरदायी होती है। जबकि राष्ट्रपति प्रणाली में दोनों के बीच पूर्ण पृथक्करण होता है।

2. कार्यपालिका प्रमुख

संसदीय प्रणाली में द्वैध कार्यपालिका (Dual Executive) होती है—राष्ट्रपति (नाममात्र) और प्रधानमंत्री (वास्तविक)। राष्ट्रपति प्रणाली में एकल कार्यपालिका (Single Executive) होती है—राष्ट्रपति ही वास्तविक प्रमुख होता है।

3. उत्तरदायित्व

संसदीय प्रणाली में मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी होती है। राष्ट्रपति प्रणाली में राष्ट्रपति विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होता।

4. स्थिरता बनाम उत्तरदायित्व

संसदीय प्रणाली में सरकार अस्थिर हो सकती है, क्योंकि अविश्वास प्रस्ताव से सरकार गिर सकती है। वहीं राष्ट्रपति प्रणाली अधिक स्थिर होती है, क्योंकि राष्ट्रपति का कार्यकाल निश्चित होता है।

5. शक्तियों का संतुलन

संसदीय प्रणाली में शक्तियों का समन्वय (Coordination) होता है, जबकि राष्ट्रपति प्रणाली में शक्तियों का स्पष्ट विभाजन होता है।

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

संसदीय प्रणाली के लाभों में उत्तरदायित्व, लचीलापन और जनता के प्रति जवाबदेही शामिल हैं। वहीं इसके दोषों में राजनीतिक अस्थिरता और बार-बार सरकार बदलने की संभावना शामिल है। दूसरी ओर, राष्ट्रपति प्रणाली स्थिरता और निर्णायक नेतृत्व प्रदान करती है, लेकिन इसमें तानाशाही प्रवृत्ति का खतरा और विधायिका के साथ टकराव की संभावना रहती है।

भारत ने संसदीय प्रणाली को इसलिए अपनाया क्योंकि यह देश की विविधता, बहुदलीय प्रणाली और लोकतांत्रिक परंपराओं के अनुकूल मानी गई। यह प्रणाली जनता के प्रति अधिक उत्तरदायी है और सरकार को संसद के माध्यम से नियंत्रित करती है।

निष्कर्षतः, दोनों शासन प्रणालियों के अपने-अपने गुण और दोष हैं। किसी भी देश के लिए उपयुक्त प्रणाली का चयन उसकी ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। भारत में संसदीय प्रणाली ने लोकतंत्र को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जबकि राष्ट्रपति प्रणाली कुछ अन्य देशों में सफलतापूर्वक कार्य कर रही है।

Q8 :- Emergency provisions in Indian Constitution – National and State Emergency.
भारतीय संविधान में आपातकालीन प्रावधान – राष्ट्रीय एवं राज्य आपातकाल।

भारतीय संविधान में आपातकालीन प्रावधान - राष्ट्रीय एवं राज्य आपातकाल

1. प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय संविधान में आपातकालीन प्रावधान (Emergency Provisions) का उद्देश्य देश की एकता, अखंडता और सुरक्षा को बनाए रखना है। असाधारण परिस्थितियों में केंद्र सरकार को विशेष शक्तियाँ प्रदान की जाती हैं ताकि संकट का प्रभावी ढंग से सामना किया जा सके। ये प्रावधान संविधान के भाग XVIII (अनुच्छेद 352 से 360) में वर्णित हैं।

2. आपातकाल के प्रकार (Types of Emergency)

- राष्ट्रीय आपातकाल (National Emergency) - अनुच्छेद 352
- राज्य आपातकाल/राष्ट्रपति शासन (President's Rule) - अनुच्छेद 356
- वित्तीय आपातकाल (Financial Emergency) - अनुच्छेद 360

(यहाँ मुख्य रूप से राष्ट्रीय एवं राज्य आपातकाल का वर्णन किया गया है)

3. राष्ट्रीय आपातकाल (National Emergency - Article 352)

(A) आधार (Grounds)

राष्ट्रीय आपातकाल निम्न स्थितियों में घोषित किया जा सकता है:

- युद्ध (War)
- बाहरी आक्रमण (External Aggression)
- सशस्त्र विद्रोह (Armed Rebellion)

(B) घोषणा (Proclamation)

- राष्ट्रपति द्वारा घोषणा की जाती है।
- मंत्रिपरिषद की लिखित सलाह आवश्यक होती है।
- संसद की स्वीकृति 1 महीने के भीतर आवश्यक।

(C) अवधि (Duration)

- प्रारंभिक अवधि - 6 महीने।

2. संसद की स्वीकृति से इसे बार-बार बढ़ाया जा सकता है।

(D) प्रभाव (Effects)

1. केंद्र की शक्तियाँ अत्यधिक बढ़ जाती हैं।
2. राज्य सरकारें केंद्र के अधीन हो जाती हैं।
3. मौलिक अधिकारों पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है (विशेषकर अनुच्छेद 19)।
4. संसद राज्य सूची के विषयों पर भी कानून बना सकती है।

(E) समाप्ति (Revocation)

1. राष्ट्रपति द्वारा कभी भी समाप्त किया जा सकता है।
2. लोकसभा साधारण बहुमत से इसे समाप्त कर सकती है।

4. राज्य आपातकाल / राष्ट्रपति शासन (Article 356)

(A) आधार (Grounds)

1. जब किसी राज्य में संवैधानिक तंत्र विफल हो जाए।
2. राज्य सरकार संविधान के अनुसार कार्य न कर रही हो।

(B) घोषणा (Proclamation)

1. राष्ट्रपति द्वारा राज्य में आपातकाल घोषित किया जाता है।
2. आमतौर पर राज्यपाल की रिपोर्ट के आधार पर।

(C) अवधि (Duration)

1. प्रारंभिक अवधि - 6 महीने।
2. अधिकतम अवधि - 3 वर्ष (विशेष परिस्थितियों में)।

(D) प्रभाव (Effects)

1. राज्य की कार्यपालिका राष्ट्रपति के अधीन आ जाती है।
2. राज्य विधानमंडल को भंग या निलंबित किया जा सकता है।
3. संसद राज्य के लिए कानून बनाती है।
4. राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है।

(E) समाप्ति (Revocation)

1. राष्ट्रपति द्वारा किसी भी समय समाप्त किया जा सकता है।
2. संसद की स्वीकृति आवश्यक होती है।

5. न्यायिक दृष्टिकोण (Judicial Approach)

1. आपातकालीन शक्तियाँ असीमित नहीं हैं।
2. न्यायालय इनकी न्यायिक समीक्षा (Judicial Review) कर सकता है।
3. S. R. Bommai v. Union of India
 - राष्ट्रपति शासन के दुरुपयोग को रोकने के लिए महत्वपूर्ण निर्णय।
 - न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद 356 का प्रयोग सीमित और उचित होना चाहिए।

6. आलोचना एवं चुनौतियाँ (Criticism & Challenges)

1. आपातकाल का दुरुपयोग (विशेषकर 1975 का राष्ट्रीय आपातकाल)।
2. केंद्र द्वारा राज्यों पर अत्यधिक नियंत्रण।
3. संघीय ढांचे पर नकारात्मक प्रभाव।
4. राजनीतिक उद्देश्यों के लिए उपयोग की आशंका।

7. निष्कर्ष (Conclusion)

भारतीय संविधान में आपातकालीन प्रावधान देश की सुरक्षा के लिए आवश्यक हैं, लेकिन इनका उपयोग सावधानी और जिम्मेदारी के साथ किया जाना चाहिए। न्यायपालिका और लोकतांत्रिक संस्थाओं की निगरानी से यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि इन शक्तियों का दुरुपयोग न हो और नागरिकों के अधिकार सुरक्षित रहें।

भारतीय संविधान में आपातकालीन प्रावधान – राष्ट्रीय एवं राज्य आपातकाल

भारतीय संविधान में आपातकालीन प्रावधानों का उद्देश्य देश की एकता, अखंडता और सुरक्षा को बनाए रखना है। असामान्य परिस्थितियों में, जब सामान्य शासन व्यवस्था प्रभावी रूप से

कार्य नहीं कर पाती, तब संविधान केंद्र सरकार को विशेष शक्तियाँ प्रदान करता है। आपातकालीन प्रावधानों का वर्णन **अनुच्छेद 352 से 360** तक किया गया है।

भारतीय संविधान में मुख्यतः तीन प्रकार के आपातकाल का प्रावधान है—राष्ट्रीय आपातकाल, राज्य आपातकाल (राष्ट्रपति शासन) और वित्तीय आपातकाल। यहाँ राष्ट्रीय और राज्य आपातकाल का वर्णन किया जा रहा है।

1. राष्ट्रीय आपातकाल (National Emergency)

राष्ट्रीय आपातकाल का प्रावधान **अनुच्छेद 352** के अंतर्गत किया गया है। यह तब लागू किया जाता है जब भारत की सुरक्षा को **युद्ध (War)**, **बाहरी आक्रमण (External Aggression)** या **सशस्त्र विद्रोह (Armed Rebellion)** से खतरा हो।

राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद् की लिखित सलाह पर राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा करता है। इसकी अवधि प्रारंभ में 1 माह होती है, जिसे संसद की स्वीकृति से बढ़ाया जा सकता है।

राष्ट्रीय आपातकाल के प्रभाव:

- केंद्र सरकार की शक्तियाँ बढ़ जाती हैं और राज्य सरकारें उसके अधीन कार्य करने लगती हैं।
- संसद राज्य सूची के विषयों पर भी कानून बना सकती है।
- **मौलिक अधिकारों पर प्रभाव पड़ता है, विशेषकर अनुच्छेद 19 स्वतंत्रता निलंबित हो जाता है** (केवल युद्ध और बाहरी आक्रमण के मामले में)।
- राष्ट्रपति, **अनुच्छेद 359** के तहत अन्य मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन को भी स्थगित कर सकता है।

2. राज्य आपातकाल (President's Rule)

राज्य आपातकाल का प्रावधान **अनुच्छेद 356** के अंतर्गत किया गया है। इसे सामान्यतः “राष्ट्रपति शासन” कहा जाता है।

यह तब लागू किया जाता है जब किसी राज्य में संवैधानिक तंत्र विफल हो जाता है, अर्थात् राज्य सरकार संविधान के अनुसार कार्य करने में असमर्थ हो जाती है।

राष्ट्रपति, राज्यपाल की रिपोर्ट या अन्य स्रोतों के आधार पर राज्य में आपातकाल लागू कर सकता है।

राज्य आपातकाल के प्रभाव:

- राज्य की कार्यपालिका राष्ट्रपति के अधीन आ जाती है।
- राज्य विधानमंडल को भंग या निलंबित किया जा सकता है।
- संसद राज्य के लिए कानून बनाने लगती है।

इसकी अवधि 6 महीने होती है, जिसे अधिकतम 3 वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है (कुछ शर्तों के साथ)।

न्यायिक दृष्टिकोण

राज्य आपातकाल के दुरुपयोग को रोकने के लिए न्यायपालिका ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। **S.R. Bommai v. Union of India** में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि अनुच्छेद 356 के अंतर्गत राष्ट्रपति के निर्णय की न्यायिक समीक्षा (Judicial Review) की जा सकती है। इससे केंद्र द्वारा मनमाने ढंग से राष्ट्रपति शासन लगाने पर रोक लगी।

वर्तमान स्थिति और आलोचना

आपातकालीन प्रावधानों की आलोचना इस आधार पर की जाती है कि ये केंद्र को अत्यधिक शक्तिशाली बना देते हैं और संघीय ढांचे को कमजोर कर सकते हैं। विशेषकर अनुच्छेद 356 का अतीत में कई बार राजनीतिक उद्देश्यों के लिए दुरुपयोग किया गया है।

निष्कर्ष

भारतीय संविधान के आपातकालीन प्रावधान देश की सुरक्षा और स्थिरता के लिए आवश्यक हैं। हालांकि, इनका प्रयोग अत्यांत सावधानी और जिम्मेदारी के साथ किया जाना चाहिए। न्यायपालिका की निगरानी और लोकतांत्रिक मूल्यों के पालन से इन प्रावधानों का दुरुपयोग रोका जा सकता है।

Que9 :- Amendment of the Constitution (Article 368)

संविधान संशोधन (अनुच्छेद 368)

संविधान संशोधन (अनुच्छेद 368)

1. प्रस्तावना (Introduction)

संविधान एक जीवंत दस्तावेज (Living Document) है, जिसे समय-समय पर बदलती परिस्थितियों के अनुसार संशोधित करना आवश्यक होता है। भारतीय संविधान में संशोधन की प्रक्रिया **अनुच्छेद 368** में दी गई है, जो संसद को संविधान में परिवर्तन करने की शक्ति प्रदान करता है।

2. संविधान संशोधन का अर्थ (Meaning of Amendment)

1. संशोधन का अर्थ है - संविधान में परिवर्तन, संशोधन या सुधार करना।

2. यह परिवर्तन नए प्रावधान जोड़ने, पुराने हटाने या संशोधित करने के रूप में हो सकता है।
3. उद्देश्य - संविधान को समय के अनुरूप और प्रासंगिक बनाए रखना।

3. संशोधन की प्रक्रिया (Procedure under Article 368)

संविधान संशोधन की प्रक्रिया निम्न प्रकार से होती है:

(1) विधेयक की प्रस्तुति (Introduction of Bill)

1. संविधान संशोधन विधेयक संसद के किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है।
2. इसे केवल मंत्री या निजी सदस्य (Private Member) प्रस्तुत कर सकता है।

(2) विशेष बहुमत (Special Majority)

1. विधेयक को पारित करने के लिए आवश्यक है -
 - सदन की कुल सदस्य संख्या का बहुमत, तथा
 - उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों का 2/3 बहुमत।

(3) राज्यों की स्वीकृति (Ratification by States)

1. कुछ संशोधनों के लिए राज्यों की स्वीकृति आवश्यक होती है।
2. कम से कम आधे राज्यों की स्वीकृति जरूरी होती है।
3. यह उन विषयों पर लागू होता है जो संघीय ढांचे से संबंधित हैं।

(4) राष्ट्रपति की स्वीकृति (President's Assent)

1. दोनों सदनों से पारित होने के बाद विधेयक राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है।
2. राष्ट्रपति की स्वीकृति के बाद वह संविधान संशोधन अधिनियम बन जाता है।

4. संशोधन के प्रकार (Types of Amendments)

(1) साधारण बहुमत से संशोधन (Simple Majority)

1. कुछ प्रावधान साधारण कानून की तरह बदले जा सकते हैं।

2. उदाहरण - राज्य पुनर्गठन, नागरिकता आदि।

(2) विशेष बहुमत से संशोधन (Special Majority)

1. अधिकांश संवैधानिक संशोधन इसी प्रकार होते हैं।
2. केवल संसद की स्वीकृति पर्याप्त होती है।

(3) विशेष बहुमत + राज्यों की स्वीकृति

1. संघीय संरचना से जुड़े विषयों में लागू।
2. जैसे - राष्ट्रपति का चुनाव, सुप्रीम कोर्ट की शक्तियाँ आदि।

5. न्यायिक दृष्टिकोण (Judicial Approach)

1. प्रारंभ में संसद को असीमित संशोधन शक्ति मानी गई।
2. बाद में न्यायालय ने इस पर सीमाएँ निर्धारित कीं।

Kesavananda Bharati v. State of Kerala

1. इस मामले में मौलिक संरचना सिद्धांत (Basic Structure Doctrine) स्थापित हुआ।
2. संसद संविधान में संशोधन कर सकती है, परंतु उसकी मूल संरचना को नहीं बदल सकती।

Golak Nath v. State of Punjab

1. संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन नहीं कर सकती (बाद में संशोधित दृष्टिकोण)।

Minerva Mills v. Union of India

1. संसद की शक्ति सीमित है, और न्यायिक समीक्षा बनी रहेगी।

6. प्रमुख विशेषताएँ (Key Features)

1. संविधान न तो पूरी तरह कठोर (Rigid) है, न पूरी तरह लचीला (Flexible)।
2. संशोधन की प्रक्रिया संतुलित और व्यावहारिक है।

- न्यायपालिका ने संसद की शक्ति पर नियंत्रण स्थापित किया है।
- संघीय ढांचे की सुरक्षा सुनिश्चित की गई है।

7. आलोचना (Criticism)

- संशोधन प्रक्रिया कभी-कभी जटिल मानी जाती है।
- संसद द्वारा शक्ति के दुरुपयोग की संभावना।
- न्यायपालिका और संसद के बीच टकराव।

8. निष्कर्ष (Conclusion)

अनुच्छेद 368 भारतीय संविधान को समय के अनुसार विकसित करने का महत्वपूर्ण साधन है। यह संविधान को लचीला और स्थिर दोनों बनाए रखता है। साथ ही, न्यायपालिका द्वारा निर्धारित मौलिक संरचना सिद्धांत यह सुनिश्चित करता है कि संविधान की मूल आत्मा सुरक्षित रहे।

संविधान संशोधन (अनुच्छेद 368)

भारतीय संविधान जीवंत (Living) दस्तावेज़ है, जिससे समय के अनुसार परिवर्तन आवश्यक होते हैं। संविधान संशोधन की प्रक्रिया का वर्णन अनुच्छेद 368 में किया गया है। यह प्रावधान संविधान को लचीला (Flexible) और कठोर (Rigid) दोनों बनाता है, जिससे यह स्थिरता और परिवर्तनशीलता के बीच संतुलन बनाए रखता है।

अनुच्छेद 368 के अंतर्गत संसद को संविधान में संशोधन करने की शक्ति प्रदान की गई है। संशोधन की प्रक्रिया विधेयक (Amendment Bill) के रूप में संसद के किसी भी सदन में प्रस्तुत की जाती है। इस विधेयक को पारित करने के लिए विशेष बहुमत (Special Majority) की आवश्यकता होती है, जिसमें सदन के कुल सदस्यों का बहुमत तथा उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत का समर्थन आवश्यक होता है।

संविधान संशोधन की प्रक्रिया को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1. साधारण बहुमत से संशोधन (Simple Majority)

कुछ प्रावधानों में संशोधन साधारण बहुमत से किया जा सकता है, जैसे—नए राज्यों का गठन, सीमाओं में परिवर्तन आदि। इन्हें वास्तव में अनुच्छेद 368 के अंतर्गत संशोधन नहीं माना जाता।

2. विशेष बहुमत से संशोधन (Special Majority)

अधिकांश संवैधानिक प्रावधानों में संशोधन के लिए विशेष बहुमत की आवश्यकता होती है।
उदाहरण—मौलिक अधिकार, नीति निर्देशक तत्व आदि।

3. विशेष बहुमत + राज्यों की स्वीकृति

कुछ महत्वपूर्ण विषयों में संशोधन के लिए संसद के विशेष बहुमत के साथ-साथ कम से कम आधे राज्यों की स्वीकृति आवश्यक होती है। जैसे—

- राष्ट्रपति के चुनाव से संबंधित प्रावधान
- केंद्र-राज्य संबंध
- न्यायपालिका की संरचना

संविधान संशोधन की प्रक्रिया में राष्ट्रपति की स्वीकृति भी आवश्यक होती है, जिसके बाद संशोधन प्रभावी हो जाता है।

संविधान संशोधन के संबंध में न्यायपालिका ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्रारंभ में संसद की संशोधन शक्ति को असीमित माना जाता था, जैसा कि **Shankari Prasad v. Union of India** में कहा गया। इसके बाद **Golaknath v. State of Punjab** में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन नहीं कर सकती।

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

Adv. Lucky & Adv. Saurabh

इस विवाद का समाधान **Kesavananda Bharati v. State of Kerala** में हुआ, जिसमें न्यायालय ने “**मूल संरचना सिद्धांत (Basic Structure Doctrine)**” प्रतिपादित किया। इसके अनुसार, संसद संविधान में संशोधन तो कर सकती है, लेकिन उसकी मूल संरचना को नष्ट या परिवर्तित नहीं कर सकती।

मूल संरचना में शामिल तत्व:

- संविधान की सर्वोच्चता
- लोकतंत्र
- गणराज्य स्वरूप
- न्यायपालिका की स्वतंत्रता
- संघीय ढांचा

इसके बाद **Minerva Mills v. Union of India** में न्यायालय ने पुनः स्पष्ट किया कि संसद की संशोधन शक्ति सीमित है और मूल संरचना को प्रभावित नहीं किया जा सकता।

वर्तमान स्थिति में संविधान संशोधन एक संतुलित प्रक्रिया है, जिसमें संसद की शक्ति और न्यायपालिका की निगरानी दोनों शामिल हैं। यह सुनिश्चित करता है कि संविधान समय के अनुसार विकसित हो सके, लेकिन उसके मूल सिद्धांत सुरक्षित रहें।

निष्कर्ष

संविधान संशोधन की प्रक्रिया भारतीय लोकतंत्र का एक महत्वपूर्ण अंग है। अनुच्छेद 368 के माध्यम से संविधान को लचीला बनाया गया है, जबकि न्यायपालिका द्वारा स्थापित मूल संरचना सिद्धांत इसे अत्यधिक परिवर्तन से सुरक्षित रखता है। इस प्रकार, यह प्रक्रिया स्थिरता और प्रगति के बीच संतुलन स्थापित करती है।

Preparer By



**Advocate Lucky Kumar
Chandpur (Bijnor)
Mob :- 9568772428**